www.shodhpith.com ISSN (Online): 3049-3331

Shodhpith
International Multidisciplinary
Research Journal
(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)
(Multidisciplinary, Bimonthly, Multilanguage)

Volume: 1 Issue: 5 September-October 2025

बुन्देली लोकगीतों में स्त्री की विभिन्न छवियाँ

प्रीति सिंह

शोधार्थिनी, हिन्दी विभाग, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म0प्र0)

डॉ0 अलका मौर्य

शोध निर्देशिका, प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, शासकीय कमलाराजा कन्या स्नातकोत्तर स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर (म0प्र0)

सारांश

सृष्टि के आरंभ से ही सृष्टि की रचना और विकास में नारी की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। सृष्टि के दो मूलभूत तत्व हैं नर और नारी। दोनों के सहयोग एवं समन्वय से ही सृष्टि की रचना होती है, मगर इसमें नारी की भूमिका पुरुष से अधिक है, कारण यह है कि नारी सृजन के साथ पालन–पोषण की शक्ति भी रखती है। वास्तव में नारी सृष्टि का मूलाधार है, समाज में भी स्त्री और पुरुष का समान अस्तित्व है, एक के बिना दूसरे का अस्तित्व डगमगाने लगता है। संसार रूपी रथ के दो पहिये के समान नर और नारी होते हैं, किसी एक पहिये के न होने से दूसरा पहिया भी अवरूद्ध हो जाता है। इसी कारण नारी और पुरुष को समान मानना ही उचित होगा। मगर हमारा समाज पुरूष प्रधान है, जहाँ पुरुष का स्थान नारी से ऊँचा ही रहा है, इतना ही नहीं सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था पुरुषों के द्वारा बनाये जाने के कारण नारी की स्थिति गौण ही रहती है। आदिकाल से आज तक नारी जीवन में उन्नति एवं अधोगति का साक्ष्य मिलता है। भारतीय समाज में नारी को देवी, पतिव्रता एवं गृहस्वामिनी मानकर उसका मनमाना शोषण भी हुआ है। "नारी को देवी दर्जा तो दिया गया, मगर उसके साथ मनुष्यता का व्यवहार कम किया गया। स्त्री की स्तुति के श्लोक व स्रोत तो बहुत लिखे गये परन्तु उनके शोषण, संघर्ष और उत्पीड़न की गाथाओं का चित्रण नहीं किया गया।"1 शास्त्रों में भी नारी के प्रति दृष्टिकोण सही नहीं था। इससे स्पष्ट है नारी का जीवन विडंबनाओं से पूर्ण है, भारतीय नारी के जीवन से अवगत होने के लिए आदिम काल, महाकाव्य काल, बौद्धकाल, जैन धर्मकाल, मध्यकाल, आधुनिक काल का अध्ययन अपेक्षित है। नवयुगीन समाज में औद्योगीकरण से रोजगार के अवसर उपलब्ध होने से नारी पूँजीवाद का एक हिस्सा बन गई। पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर उत्पादन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग की कामकाजी औरतें आर्थिक रूप से सुदृढ़ होने का प्रयास करती दिखती है। शोभा नाटाणी लिखती हैं कि "19वीं और 20वीं शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। जैसे–जैसे स्त्रियों में साक्षरता का प्रसार होगा औद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया तेज होगी उसके साथ–साथ स्त्रियों की स्थिति में भी अवश्य सुधार आयेगा, आज स्त्रियों में सामाजिक चेतना बढ़ती जा रही है।"

स्त्री और पुरूष भेद

आदिम कालखंड में मानव यायावर जीवनयापन करता था। प्रायः स्त्री और पुरुष दोनों स्वतंत्र रहते थे। वन्य सहचर खूँखार बड़े हिंसक पशुओं के आक्रमणों एवं अन्य मनुष्यों के संभावित आक्रमणों से बचाव के लिए शक्ति एवं पराक्रम की आवश्यकता पड़ती थी। वहाँ नारी दोहरी भूमिका निर्वाह करती, कभी शक्ति प्रदर्शन करती, कभी अपने जैविक घटनाओं के कारण आधे से ज्यादा समय किसी बड़े चट्टानों या कंदराओं की ओट में समय बिताती और सुरक्षा एवं जीविका के लिए अंशतः पुरुष पर निर्भर हो जाती। खानाबदोश युग में अपने जीवन को खतरे में डालने तथा बचाव करने के लिए अधिक श्रेष्ठता पुरुषों को मिला न कि जीवनधात्री नारी को। नारी सिर्फ मादा पशु की तरह अपनी शारीरिक सीमाओं में प्रजनन क्षमता के कारण सदा के लिए कैद कर दी गयी और बच्चे के पालन–पोषण में उसे अपनी क्षमता खो देनी पड़ती थी। खानाबदोश मानव के कृषि जीवन में प्रवेश से उनके जीवन में स्थिरता आ गई। प्रारंभिक कृषि युग में नारी इतनी अधीनस्थ नहीं थी कि इसे गुलाम कहा जाये। कृषि में अधिक श्रमशक्ति की माँग से कबीले एवं परिवार में नारी का मान बढ़ा। उसके प्रजनन को महत्व दिया जाने लगा, मातृत्व भी पवित्र कार्य बना। आदिम समाज में नारी की स्थिति पर सिमोन लिखती हैं कि "परिवार में उसे प्राथमिकता प्राप्त था। वंश का नाम माँ के नाम से चलता था। सामूहिक सम्पति का स्वामित्व भी औरत के पास था। वह अपने बच्चों के माध्यम से इस सम्पत्ति की रक्षा करती थी, औरत की तुलना धरती से की गई।"[1] इस समय नारी पुरुष की दृष्टि में एक रहस्य से कम भी न थी। उसकी प्रजनन उर्वराशक्ति को धरती के समतुल्य माना गया और उसे अनसुलझे रहस्य अर्थात् काले जादू के रूप में देखा जाने लगा।

ज्यों–ज्यों खेतिहर समाज का विकास होता गया पुरुष का आत्मविश्वास बढ़ता गया, उसकी महत्वाकांक्षा असीमित होती गई। सम्पत्ति पर अधिकार जमाना शुरु किया। सम्पत्ति, जमीन का मालिक बन, नारी को अधीनस्थ कर उसका भी स्वामी बन गया फिर अधिकारहीन नारी के शोषण का सिलसिला शुरु हुआ। बच्चे के जन्म के लिए पुरुष के शुक्राणुओं को महत्व दिए जाने से परिवार एवं कबीले पर नारी का अधिकार सहज ही समाप्त हो गया। इस प्रकार मातृसत्ता का पितृसत्ता में तब्दील होना स्त्री की ऐतिहासिक हार रही है। आदिम पितृसमाज में नारी का जीवन गुलाम सा रहा है। आलोच्य काल में "अढ़ियाँ इस कदर बढ़ी कि कन्या बोझ लगने लगी। जन्म के साथ उसकी हत्या का प्रचलन शुरु हो गया। उससे जीने के सारे अधिकार छिन लिये गये। अरब के लोगों में लड़की को जनमते ही गढ्ढे में फेंक दिया जाता और यदि पिता कन्या को स्वीकारता था तो वह उसकी महान उदारता कही जाती।"[2] नारी का जीवन पूरी तरह से पुरुष की कृपा दृष्टि का मोहताज हो गया। उसका वास्तविक मूल्य गाय बछड़े व जमीन के एक टुकड़े से अधिक न रह गया। वह एक जीवित वस्तु एवं वैयक्तिक सम्पत्ति बन गयी। पितृसमाज में नारी के आचरण पर अनेक प्रतिबंध लगाये गये। व्यभिचारिणी के लिए मृत्युदंड देने का विधान था। इसके विपरीत पुरुष पूरी तरह स्वतंत्र था। इस प्रकार कह सकते हैं आदिम काल में मातृसत्तात्मक समाज में नारी के मातृत्व को सराहा गया और उसे सम्मान दिया गया। लेकिन यहां से बेदखल कर दिये जाने के बाद नारी जीवन भयावह हो गया।

महाकाव्य कालीन रामायण तथा महाभारत समाज तक आते–आते नारी जीवन में बहुत गिरावट आ गयी थी। नारी पिता व पति के घर में परतंत्र थी। उसकी शिक्षा–दीक्षा के प्रति उदासीनता बढ़ गई थी। हालाँकि उच्च घरों की नारी अनौपचारिक शिक्षा ग्रहण करती थी। कन्या सदा अवगुंठन में रहती थी। महाभारत कालीन समाज में इसके लिए 'असूर्यम्पश्याः' शब्द का प्रयोग होता था। द्रोपदी को पहली बार स्वयंवर सभा में देखा गया था। बहुएँ सास–ससुर के अधीन रहती थी और विशिष्ट अवसरों पर ही बाहर आती थी। आलोच्यकाल में स्त्रियों का अपहरण, यौनाचार, असुर विवाह जैसी भयावह कृत्य घटित होने से नारी एवं कन्या का जीवन शोचनीय हो गई थी। द्वारिका से हस्तिनापुर लौटती हुई यादव स्त्रियों का अपहरण दस्युओं द्वारा हुआ जबकि धनुर्धर पार्थ उनके साथ ही थे। तो अकेली अबला का अपहरण तो सामान्य बात रही थी, स्त्रियों का दैहिक शोषण चरम पर था। यह सर्वविदित है, सीता वैदेही पुत्री कही गई हैं। इससे यह कहना असंगत न होगा, यह किसी स्त्री का अवैध संबंध अनैच्छिक या गर्भाधारण से उपजी हुई अलौकिक जीव रही है जिसे लोक लाज के भय से जमीन में गाड़ दी गई। यथा कुंती जैसी कुंवारी माँ को भी अपनी संतान को चौपर में रखकर बहा देना पड़ा था।

राजाओं एवं सामंतों में बहुविवाह की प्रथा होने के कारण नारी का निरंतर पतन हो रहा था। राजा दशरथ

की 3 रानियाँ और 500 उपरानियाँ थी। कुछ को छोड़ नारी का जीवन रखैल का था। स्त्री दान और दहेज में दे दी जाती थी, और कुछ रूपसी किशोरियाँ एवं युवा दासियाँ उपहार स्वरूप भेंट दी जाती थी। "भरत ने हनुमान को राम के लौटने का शुभ समाचार सुनाने पर सोलह कन्याएँ पत्नी रूप में प्रदान की थी।"[3] इस प्रकार आलोच्य काल में नारी भोग विलास का एक साधन और एक वस्तु से ज्यादा कुछ न थी।

प्रारंभिक बौद्ध कालीन समाज में नारी के जीवन में कोई सुधार दिखाई नहीं देता। सामाजिक आदर्शों एवं नैतिक मूल्यों में भारी गिरावट से नारी जीवन शोचनीय हो गई थी। नारी में सत् और असत् दोनों रूपों के साक्ष्य थे। समाज में दास–प्रथा के अस्तित्व होने के कारण दासियाँ घोर उपेक्षित होती थी। वह दैहिक शोषण का शिकार होती और उसका क्रय–विक्रय भी होता था। यद्यपि बौद्ध धर्म का उदय हिन्दू धर्म की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही हुआ था। मठों में प्रायः यातना भुक्त, पतित्यक्ता, पति का प्राणान्त करने वाली, गणिका, वेश्याएँ जैसी औरतें ही प्रवेशित होती थी। हालाँकि राज परिवार की कुछ महिलाएँ माता गौतमी, भगिनी नंदा, कन्या सेला भी भिक्षुणी बनी थी। संघ में नारियों का प्रवेश सहज नहीं था। बुद्ध स्वयं इसके विरोध में थे। कारण कि वे मानते थे "सहस्त्र वर्षों जीवित रहने वाला संघ आधी उम्र में ही जीर्ण–शीर्ण हो जायेगा।" भिक्षुक (शिष्य) आनंद के सिफारिश पर महिलाओं का प्रवेश संभव हुआ। 100 भिक्षुणियों ने मिलकर 'थेरीगाथा' नामक गीत संग्रह की रचना की और थेरी कहलाई।

जैन धर्म में नारी के प्रति उदार एवं उदात्त भाव रखने के बाद भी नारी का जीवन निम्न बना रहा। हालाँकि बौद्ध धर्म की देखा–देखी श्रमण श्रेष्ठ ने नारियों के लिए संघ का द्वार खुला रखा। संघ में भिक्षुणियों को भिक्षुक के समकक्ष अधिकार प्राप्त था, परन्तु स्त्री–पुरूष के वर्चस्व में पुरुष को ही महत्व दिया गया। साध्वी में सारी उत्तमताओं के बावजूद संघ में उनकी उपेक्षा कम न हो सकी। वरिष्ठता प्राप्त प्रवर्तिनी (श्रमणी संघ का प्रधान) भी आचार्य के अधीन रहती थी।

आधुनिक समाज में नारी सदियों की अढ़ प्रथाओं की बेड़ियों तथा पुरुष की दासता के चंगुल से छूटने का प्रयास करती दिखती है। आधुनिकता और षिक्षा के प्रचार–प्रसार से नारी में परिवर्तन स्पष्ट है। 19वीं सदी के पूर्वाद्ध में हृदय विदारक सती प्रथा से मुक्ति मिली। राजा राममोहन राय के सफल प्रयासों से 1829 ई. में सती प्रथा का वैधानिक रूप से अंत हुआ। तत्कालीन समाज में नारी की दयनीय स्थिति को सुधारने की दिशा में अनेक सुधारकों– ईश्वरचंद, विद्यासागर, महर्षि दयानंद सरस्वती, महादेव रानाडे, ज्योतिबा फूले ने उल्लेखनीय कार्य किया। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के बीतते–बीतते लोगों को लगा कि आधी आबादी के पिछड़ेपन का मूल कारण अशिक्षा है। नारी शिक्षा के लिए स्कूल खोले गये तथा समाज में नारी की विद्रूपताएं, स्त्री–पुरूष असमानता, कन्या विक्रय, कन्या वध आदि को समाप्त करने के काम किये गये। तत्कालीन समय में चल रहे आंदोलन में नारियों को भागीदारी भी बढ़ी। महात्मा गाँधी स्त्रियों को पुरूषों के बराबर मानते थे। सामाजिक जन भागीदारी में कस्तूरबा गाँधी, स्वरूप देवी, एनीबेसेंट, सावित्री देवी फूले आदि ने घर की चौखट लाँघ कर कदम आगे बढ़ाई।

लोक में नारी जीवन– भारतीय समाज में नारी का जीवन सरल–सहज न होकर, अभावग्रस्तता से युक्त, संघर्षपूर्ण जीवन है। आधुनिक समाज में वह मध्यकालीन सामंती परम्परा के शोषण एवं उत्पीड़न से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पायी है। वह घर की चहारदीवारी में रहकर भारतीय परम्पराओं का निर्वाह करने के लिए वह मजबूर है। समाज में बढ़ती विषमता एवं अंतर्विरोधों की स्थिति से नारी जीवन विडंबनाओं से युक्त है। प्रायः ग्रामीण नारी समाज की सड़ी–गली अढ़ प्रथाओं, रुग्ण मान्यताओं एवं धार्मिक आडंबरों से घिरी हुयी है और शहरी नारी पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण करने के लिए बेतहाशा दौड़ लगा रही है। इसके बावजूद भी वह सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि अन्य क्षेत्रों में उपेक्षित है। लोकजीवन में नारी की वास्तविक स्थिति को विविध तरह से जानने का प्रयास किया जा रहा है।

समाज और नारी– लोक जीवन में समाज एक स्वतंत्र संस्था के रूप में स्थापित है, परन्तु समाज में नारी कभी भी पुरुष की समान एक स्वतंत्र अंग के रूप में प्रतिष्ठित नहीं होती। भारतीय समाज पुरुष प्रधान है। पुरुष ने सदैव समाज में अपना प्रभुत्व बनाए रखा है जिस कारण नारी की स्थिति पुरुष के अपेक्षाकृत कमजोर एवं कमतर है। पुरूष प्रधान सामाजिक व्यवस्था भी नारी के लिए दोयम है। पुरुष और उसका क्रूर समाज हमेशा उसे एक अबला मानकर शोषण और दमन करता आया है। समाज में नारी के जीवन पर कालमार्क्स की धारणा यह रही है कि "स्त्रियों की पराधीनता वर्ग–समाज का आधारभूत तत्व है और (पुरुष समुदाय सहित) पूरे समाज की दुरावस्था का एक बुनियादी कारक है।"[5] सदियों से नारी पुरुषों की दासता, गुलामी, अन्याय का शिकार होती है और समाज के

प्राप्त अधिकारों से प्रायः अपरिचित ही रह जाती है। कैसी विडंबना है? भारतीय समाज में नारी को देवी दुर्गा की उपमा तो दी जाती है, वहीं उसे भोग्या के रूप में ही देखा जाता है। वास्तव में प्राचीन काल से उसे मानवी रूप में देखने का प्रयास संभवतः कम हुआ है। इस दृष्टि से उसे समाज में समान सामाजिक स्थिति प्रदान नहीं की गई है।

भारतीय समाज में लैंगिक असमानता की जड़ें बहुत गहराई तक समायी हुई हैं। समाज में नारी को अपने जीवन का निर्धारण व कर्तव्यों के पालन के लिए पुरूष पर निर्भर रहना पड़ता है। घर—परिवार, समाज व राष्ट्र में स्त्री और पुरुष के बीच विषमता की स्थिति व्याप्त है। समाज में विद्यमान सड़ी—गली अढ़ियों एवं प्रथाओं का शिकार मुख्यतः नारी ही बनती है, लेकिन पुरुष वर्ग इससे अछूता ही रहता है। बाल विवाह, सती प्रथा, दहेज, बहुविवाह की विभीषिका नारी जीवन के लिए नासूर बना हुआ है। समाज में नारी की स्थिति के बारे में शोभा नाटाणी लिखती हैं कि "21वीं सदी में कदम रखने वाले भारतीय समाज में नारी को आज भी वह दर्जा प्राप्त नहीं हुआ है, जो बहुत पहले मिल जाने चाहिए थे। वधू हत्या आज भी निर्भयतापूर्वक होती है। तलाक नारी के लिए कलंक है, पर पुरुष के लिए आजादी है। यहाँ बालिका भ्रूण हत्या एक फैशन है। एक ऐसे अमानवीय पतनशील समाज में स्त्री फिर भी जीवित है।"6 आधुनिक समाज में नारी के लिए जटिलताएँ एवं असुरक्षा भी बढ़ गई हैं। भारतीय समाज में नारी जीवन की यथार्थ स्थिति राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो 2005 की रिपोर्ट से स्पष्ट हो जाता है। हर चौथे मिनट में स्त्री के साथ उत्पीड़न, हर 15 वें मिनट पर स्त्री से छेड़छाड़, हर 53वें मिनट पर स्त्री का यौन उत्पीड़न, हर 9वें मिनट पर पति या संबंधी से उत्पीड़न, हर 17वें मिनट पर एक दहेज हत्या, हर 29वें मिनट पर एक बलात्कार होता है। इस आँकड़े से स्पष्ट हो जाता है लोकसमाज में नारी जीवन कितना असुरक्षित, अपमानित, पीड़ामय एवं दुर्भावना से पीड़ित होने के कारण शोचनीय दशा में है।

परिवार और नारी— लोक जीवन में परिवार एक मौलिक सामाजिक इकाई है। जो नारी की प्रच्छन्न दासता पर अवलंबित है। परम्परानुसार नारी को परिवार में जो दायित्व सौंपे गये हैं वह एकनिष्ठ समर्पण की होती है। पत्नी और माता के रूप में उसे परिवार में सेवा, करूणा, सहनशीलता की भूमिका निभानी पड़ती है। पारिवारिक व्यवस्था में नारी की महत्ता स्वीकारी जाती है, मगर उसको पुरुषों की तुलना में कम महत्व दिया जाता है। परिवार के भीतर नारी की स्थिति पर फ्रीड एंगेल्स का कथन है कि "परिवार के अंदर वह (पुरुष) बुर्जुआ है और उसकी पत्नी सर्वहारा का प्रतिनिधित्व करती है।"[7]

भारतीय परिवार व्यवस्था कुछ अपवाद को छोड़कर पितृसत्तात्मक है। पितृसत्ता में नारी को जैविक स्थिति से परिचय कराकर उससे सारे अधिकार छीन लिया गया है। वह परिवार में प्रायः सारे वैधानिक अधिकारों से वंचित रही है तथा उसका अस्तित्व पुरुष की कृपा पर निर्भर रहता है। परिवार में पति की हुकूमत चलती है। परिवार में नारी पति से ज्यादा समझदार या ज्यादा पढ़ी—लिखी ही क्यों न हो, पति की गुलामी के बंधन में बँधी रहती है। नारी की पारिवारिक दासता पर जॉन स्टूअर्ट मिल लिखते हैं कि "पत्नी जहाँ कानूनी बाध्यता का संबंध है। आज भी दासों की तरह पति की बँधुआ मजदूर है। वह विवाह की वेदी पर जीवनपर्यन्त पति आज्ञाकारिता का वचन लेती है और कानून द्वारा जीवनपर्यंत इससे बँधी रहती है।"[8] पति के आदेश पर हँसने और रोने वाली नारी का पारिवारिक जीवन पराधीनता के चंगुल में फँस जाता है। वर्तमान में कन्या भ्रूण हत्या के आँकड़े भी बढ़ रहे हैं। उसकी शिक्षा व स्वास्थ्य पर निराशाजनक रवैया भी अपनाया जाता है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण की ताजा रिपोर्ट से पता चलता है कि मातृत्व मृत्युदर पहले कई सालों की कोशिशों के बावजूद कम होने के बजाये बढ़ ही रहे हैं। प्रायः नारी का बाहरी संसार से किसी प्रकार का नाता नहीं रह जाता। वह सार्वजनिक जीवन से अनभिज्ञ रहती है, जिससे उसके व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं हो पाता। इस प्रकार से पाते हैं कि परिवार में नारी का यथार्थ जीवन दयनीय है वह सम्मान की अधिकारिणी होने के बावजूद आमतौर पर परिवार की दासी व सेविका ही बनी रहती है।

राजनीति और नारी— लोक की नारी राजनीतिक क्षेत्र में अपने लिए निराशाजनक माहौल पाती हैं। आज नवज. ागरण के कारण राजनीति के प्रति उत्साह तो बढ़ रहा है। लेकिन उनका प्रवेश आसान नहीं। नारियों के बारे में सर्वमान्य धारणा यही हैं कि "स्त्रियाँ स्वाभाविक और प्राकृतिक तौर पर पारिवारिक जिम्मेदारियाँ प्रजनन और शिशु पालन आदि के लिए बनी है और कभी वे सामाजिक तौर पर पुरुषों के समकक्ष नहीं हो सकती।"[9] लेकिन धनबल शक्ति से युक्त राजनीति का क्षेत्र अब केवल पुरुषों का नहीं रहा है। प्रत्येक काल में नारी राजनीति और शासन प्रणाली में कमोबेश अपनी उपस्थिति दर्ज अवश्य करवायी है। आज नारी की भागीदारी राजनीति में दिखायी देती

है, परन्तु उसके राजनीतिक अधिकारों व निर्णयों पर पुरुषों का दबाव बना रहता है।

देश की राजनीति में महिलाओं की भागीदारी राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से निरतंर बढ़ती चली गयी और 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में वह उल्लेखनीय रूप से प्रकाश में आयी। राजनीतिक क्षेत्र में नारी के प्रवेश पर आशारानी व्होरा लिखती हैं कि "राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं का वास्तविक पदार्पण बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से मानना होगा। बीसवीं सदी के प्रथम दशक में कांग्रेस के स्वदेशी आंदोलन में महिलाओं ने एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और दूसरे दशक में वे सीधे राजनीतिक क्षेत्र में उतर पड़ी।"[10] गाँधी जी के नेतृत्व में महिलाओं ने नमक सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा, भारत छोड़ो आंदोलन में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। परन्तु उनकी बढ़ती संख्या पुरुषों के लिए चिंता का विषय बन गयी। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय जो नारी, पुरुष वर्ग की सहयोगी के रूप में खड़ी थी, कालांतर में उसे प्रतिद्वंद्वी मानकर राजनीति से बाहर धकेल दिया गया।

विडंबना यह है कि स्वतंत्रता पश्चात ज्ञान–विज्ञान और व्यवसाय के क्षेत्रों में महिलाएँ जिस प्रकार आगे बढ़ी हैं, राजनीति के क्षेत्र में नहीं आयीं। स्वतंत्रता पश्चात 1952 ई. में पहली लोक सभा में कुल 499 सीटों में 22 सीट पर महिलाओं की जीत हुई और वर्तमान में 17वीं लोक सभा चुनाव में 542 सीटों पर 48 महिला सांसद चुनी गयी। भारतीय संसद में पुरुषों की तुलना में नारी की संख्या नगण्य है। राजनीति में भी उनकी स्थिति हाशिये पर बनी हुई है।

दलित नारी का जीवन– भारत में दलित जाति की स्त्री का जीवन सदियों से पीड़ित, शोषित, अत्याचार एवं उत्पीड़न से ग्रसित रहा है। इसे समाज में हर मानवीय अधिकारों से वंचित कर सामाजिक तौर पर नकार दिया जाता है। पितृसत्तात्मक समाज निम्न पायदान पर स्थित नारी के शोषण एवं उत्पीड़न को स्वीकृति प्रदान करता है। समाज व परिवार में दलित नारी की स्थिति कल भी तुच्छ एवं नगण्य थी और आज भी है। परिवार में बद से बदतर जीवन जीती है पति से पशु के समान पिटी जाती है और घर से बाहर सवर्णों द्वारा हर तरह के शोषण का शिकार होती है। इनकी आर्थिक स्थिति निम्न होने से दयनीय जीवन भोगती हैं। इनके काम–धंधे पारम्परिक रूप से लोगों की सेवा करना, जूठन उठाना, बर्तन माँजना तथा अन्य गंदे से गंदा काम करना होता है। हालाँकि यह पारंपरिक कार्य करने के बंधन तेजी से टूट रहे हैं परन्तु निम्न स्तर के कार्य प्रायः यही महिलाएँ करती हैं। इनके जीवन में आर्थिक तंगी बनी ही रहती है। "वास्तव में दलित आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था का प्रतीक है जिसमें व्यक्ति, व्यक्ति का शोषण करता है। मानव अधिकारों का हनन करता है, शोषित वर्ग का प्रतीक है दलित। दलित वे लोग नहीं हैं जिन्होंने एक ही देश के व्यक्तियों और नारियों को समाज के निम्न पायदान पर बैठा दिया है। माँ के कोख से न तो पुरुष छोटे रूप में पैदा होता है और न ही नारी। अतः कहा जा सकता है दलित नारी का जीवन अत्यंत दयनीय है। वह घर, परिवार व समाज में उपेक्षित है। उपेक्षित होना उसकी नियति बन गई है। समानता और सामाजिकता के अधिकार संविधान द्वारा तो मिले हैं, परन्तु वह इससे अपरिचित ही रहती है। दलित नारी अन्य गैर दलित नारियों की तुलना में अधिक प्रताड़ित होती है।

निम्नवर्गीय श्रमिक नारी– लोक में निम्न वर्ग कभी दास, भूदास, कृषिदास, श्रमिक, सर्वहारा आदि शब्दों से अभिहित होता रहा हैं। अति निर्धनता, अशिक्षा, निम्न जीवन स्तर इसके लक्षण माने जाते हैं। निम्न वर्गीय श्रमिक महिलाएँ कामकाजी नारी के 80 प्रतिशत की जनसंख्या होती है। अधिकतर इनके कामकाज भी निम्न स्तर के होते हैं। ये कभी किसी ईमारत के नीचे ईट पत्थर ढ़ोते, तो कभी जलपान संस्थान में जूठे बर्तन धोते, तो कभी घर–घर जाकर चौकाबर्तन आदि अनेक काम करती दिखती हैं। ये महिलाएँ दिन भर कामों में खँटती रहती हैं। फिर भी इनको अधपेट भोजन ही नसीब होता है। कारण इनकी कमाई के पैसे पति शराब पीने में उड़ा देते हैं। परिवार की जवाबदारी नारी के कंधे पर रहती है। परिवार में निम्नवर्ग की नारी अधिक उपेक्षित और प्रताड़ित होती है। पति के लात घूसे का प्रहार रोज की बात होती है। निम्न वर्गीय नारी शारीरिक अत्याचारों का शिकार होती है, कई बार जला दी जाती है। ऐसी खबरें अखबार में पढ़ने को मिल जाते हैं। कहा जा सकता है निम्न वर्गीय श्रमिक महिलाओं का जीवन अत्यधिक कारुणिक एवं दयनीय होता है। इनमें शिक्षा तथा स्वास्थ्य का स्तर निम्न होता है तथा अज्ञानतावश अनेक अढ़ियों, प्रथाओं एवं सामाजिक कुरीतियों के जाल में उलझी हुयी, दमन के कुचक्र का शिकार होती है।

कामकाजी नारी– लोक में नारी सदियों से घर और बाहर दोनों जगह कामकाज करती आयी हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात शिक्षा के प्रचार–प्रसार होने तथा औद्योगीकरण के कारण रोजगार के अवसर उपलब्ध होने से

महिलाएँ, दफ्तरों, अस्पतालों, शैक्षणिक संस्थानों व विभिन्न निकायों में कार्यशील हैं, किन्तु इनकी संख्या बहुत कम है। नारी को घर से बाहर नौकरी तो मिलती है परन्तु उससे जुड़ी समस्याएँ भी बढ़ जाती है। कार्यालयों में अनेक पुरुषों की नजरों को झेलते काम करना पड़ता है वहीं दूसरी ओर पति की आँखों में मंडराने वाले संदेह के बादलों का भी सामना करना पड़ता है। घर और बाहर दोनों जगहों के बढ़े कार्य एवं जिम्मेदारियाँ उसकी कार्य क्षमता से कहीं अधिक है। नारी की स्थिति एक चक्की के दो पाटों में फँसे दानों की तरह हो जाती है। घर और बाहर के कार्यों में सामंजस्य बनाना उसके लिए सबसे बड़ी चुनौती होती है। हर हाल में उसे अपने आप को दोनों जगह योग्य साबित करना पड़ता है। यदि दोनों जगहों में कहीं भी चूक हुई तो उसे सिर्फ ताने ही सुनने को मिलते हैं। घर हो या बाहर दोनों स्तर पर महिलाओं को अधिक जिम्मेदारियाँ निभानी पड़ती है।

कामकाजी महिलाएँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक तनाव व दबाव सहती हैं। अपनी नई पुरानी भूमिका का निर्वाह करते टूटने की कगार तक पहुँच जाती हैं। पुरुष प्रधान समाज में उसके लिए कोई संवेदना और सहानुभूति नजर नहीं आती। पति का अहं भाव आड़े आने से उनकी परेशानियाँ और अधिक बढ़ जाती है। अंहम भाव से ग्रस्त परम्परावादी पति न तो अपनी पत्नी की मदद करता है और न ही उसकी विवशता को समझने को तैयार रहता है। बल्कि उससे उतनी ही सुख सुविधा की उम्मीद रखता है, जितनी घर में रहने वाली एक पत्नी दे सकती है। बच्चों का खोता हुआ बचपन देखना उसकी विवशता है, उम्र से पहले ही उसके बच्चे वयस्क हो जाते हैं। उसके श्रम और पैसा दोनों का योगदान घर चलाने में होता है। नौकरी करने व आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने पर भी उसकी पुरुष पर हमेशा की तरह आर्थिक निर्भरता कम नहीं होती। पति–पत्नी का एक पेशे में कार्यरत रहने से प्रतियोगिता की भावना भी पैदा होती है। प्रायः इनके बीच टकराव भी देखा गया है। कामकाजी महिलाओं की त्रासदी पर श्यामा शरण का अभिमत हैं कि "आज की आत्मनिर्भर महिलाओं की मुसीबत इन पतियों ने बढ़ायी है जो किसी भी तरह अपने से अधिक सफल और प्रगतिशील पत्नी बर्दाश्त नहीं कर सकते।"[12] वास्तव में नारी की कामयाबी से पुरुष के अहं को ठेस पहुँचती है।

आदिवासी नारी का जीवन– भारतीय समाज में आदिवासी नारी का जीवन सबसे अधिक संघर्षमय एवं पिछड़ा हुआ जीवन है, पर इनकी सामाजिक दशा तथाकथित गैरआदिवासी वर्ग से बेहतर है। प्रायः सोचा जाता है कि उन्नत समाज में स्त्रियों की स्थिति उन्नत होती है और निम्न समाजों में निम्न। इसी धारणा के आधार पर अनुमान लगा दिया जाता है। आदिम जातियों के लोग चूंकि जंगली या अर्द्ध सभ्य होते हैं। इसलिए उनमें स्त्रियों की सामाजिक स्थिति अत्यंत दयनीय होगी। पर ऐसा नहीं है............भारत के विभिन्न आदिम समुदायों में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में पर्याप्त भिन्नता के बावजूद कुल मिलाकर उनका सामाजिक स्तर शिक्षित और उन्नत समाजों की अपेक्षा कहीं ऊँचा है।"[13] वस्तुतः आदिवासी समाज, आदिम समाज के अधिक निकट है, उनकी सामाजिक संरचना में आदिम समाज व्यवस्था का साक्ष्य वर्तमान में भी उपस्थित है। भारतीय आदिवासी पितृवंषीय परिवार के साथ मातृवंषीय परिवार का अस्तित्व आज भी बना हुआ है। मातृवंषीय परिवार में औरतों का स्थान पुरुषों से ऊँचा रहा है, लेकिन पितृवंषीय आदिवासी परिवार में नारी का स्थान पुरुष से कमतर या निम्न न होकर समानता का देखा जा सकता है।

आर्थिक दृष्टिकोण से देखा जाये तो जनजाति महिलाएँ परिवार के आर्थिक ढाँचे में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वह पुरुषों से अधिक कड़ी मेहनत करती हैं, हल चलाना, लकड़ी काटना, नाव चलाना आदि कार्य वे करती हैं। वह स्त्री सुलभ कार्य के अतिरिक्त पुरुष सुलभ कार्य के बोझ में दबी होती हैं। इसके अतिरिक्त वन उपज संग्रहण में भी उसकी विशेष भूमिका है। वास्तव में वन व्यवस्था मूल रूप से महिलाओं की अर्थव्यवस्था है। यह उसकी जीविका के मुख्य साधन में से एक है और इस कार्य में वह ज्यादा विश्वास करती है, लेकिन अफसोस पारम्परिक भूमि पर उसका श्रम और संग्रहण वनों के कार्पोरेट शोषण से अधिक प्रभावित है। यथार्थ धरातल पर आदिवासियों का जीवन अत्यंत दुरुह कठिन एवं संघर्षों से भरा हुआ है। इनका निवास स्थल दुर्गम, दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्र, घने जंगलों व पहाड़ों में है, जहाँ आधुनिक सुख–सुविधाओं का प्रायः अभाव देखा जा सकता है। यहाँ सरकारी विकास की योजनाएँ काफी देरी से पहुँचती हैं, ये अपने मूल अवस्था में बने रहते हैं। इनमें गरीबी सर्वव्याप्त है, जिसके कारण संतुलित आहार एवं पौष्टिक भोजन न मिल पाने से कुपोषण से ग्रसित दिखते हैं। आदिवासी महिलाएँ प्रजनन, स्वास्थ्य संबंधित अनेक समस्याओं का सामना करती हैं। महिलाओं में साक्षरता दर पुरुषों से काफी कम है। अज्ञानता एवं अधिकार बोध के अभाव से विकास और उन्नति के अवसरों से प्रायः ये वंचित रह जाती हैं। राम आहूजा आदिवासी नारी की प्रस्थिति के बारे में लिखते हैं कि "आदिवासियों में स्त्रियों की प्रस्थिति इतनी निम्न है

कि उन्हें ज्ञान (आर्थिक संसाधनों और सत्ता का ज्ञान) नहीं है।"[14]

अत्यधिक शोचनीय स्थिति तब निर्मित होती है, जब काम की तलाश में पारंपरिक भूमि से पलायन कर वह गाँव से नगर–महानगर आती हैं। तथ्य यह भी है कि वे प्रायः एजेंसी के लोगों द्वारा प्रलोभन देकर या झूठे सपने दिखाकर लायी गयी होती हैं। इन एजेंसियों द्वारा काम दिलाने की आड़ में उनकी मेहनताना या उनके श्रम के मूल्य में वे हिस्सा बांटते हैं। ऐसे में कामगार महिला के हाथ में ज्यादा कुछ नहीं बचता। कुछ एजेंसी वाले मानव तस्कर होते हैं। वे युवतियों को शहर लाकर बेच देते हैं। आदिवासियों पर शोध करने वाली गीता श्री लिखती हैं कि "शिकारी दिल्ली में बैठे रहते हैं और शिकार बन जाती है, झारखण्ड की लड़कियाँ। शिकारी मुंबई में होते हैं और झारखण्ड की लड़कियों का हो जाता है सौदा। वह सब एक दिन में नहीं होता। इसके पीछे महीनों की सा. जिश होती है। झारखण्ड में आदिवासियों के गांव में शिकारी के सूत्र भटकते रहते हैं। उन्हें तलाश होती है ऐसी मजबूर और लाचार परिवार की जिसका मुखिया बिना किसी सवाल जवाब उनकी बात मान ले। यहीं से शुरू होती है किसी लड़की की सौदे की बात।"[15] एक रिपोर्ट के अनुसार हर साल 30 हजार आदिवासी लड़कियों का सौदा होता है, उनमें से 12 हजार लड़कियाँ कभी लौट कर वापस नहीं आयी। ये लड़कियाँ जिस्मफरोशी, वेश्यावृत्ति के धंधे में झोंक दी जाती हैं। इनका शोषण कई रूप में अनेक परतों में दिखाई पड़ता है।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि लोक में नारी का जीवन सभी क्षेत्रों में उपेक्षित है। पुरुष प्रधान समाज में उसकी भूमिका व योगदान को महत्व न देकर उसे एक सिरे से नकार दिया जाता है। व्यावहारिक जगत में उसके प्राप्त अधिकार पुरुर्षों से काफी सीमित हैं। समाज की अढ़ियाँ, प्रथाएँ भी नारी के जीवन के नासूर बने हुए हैं। इनसे सबसे ज्यादा नारी ही प्रताड़ित होती है। इस कारण वह पुरुष के समान्तर कभी नहीं आ पायी। धन–बल से युक्त राजनीतिक क्षेत्र में लोक की नारी का प्रवेश आसान नहीं। वर्तमान में भ्रष्ट होती राजनीति, बेतहाशा चुनावी खर्चे तथा अन्य लेनदेन में आर्थिक परवशता से, सीधी–सादी नारी असमर्थ दिखती है। यदि संयोगवश राजनीति में प्रवेश हो भी जाता है, तो उनमें सत्ता चलाने तथा निर्णय लेने के तमाम गुण होने के बावजूद पुरुष के हाथों की कठपुतली बनने के लिए मजबूर होना पड़ता है। समाज के निम्न पायदान पर दलित नारी है। वह समाज में कल भी तिरस्कृत थी और आज भी है। छुआछूत, भेदभाव आदि अमानवीय कृत्यों को सहती है। आर्थिक दृष्टि से देखा जाये तो लोक की नारी श्रमशील है। यद्यपि अर्थव्यवस्था में उसके श्रम की भागीदारी को गिना नहीं जाता। लोक जीवन की नारी घर की चारदीवारी में कैद कभी नहीं हुयी। शिक्षित और अशिक्षित नारी दोनों घर और घर के बाहर कृषि, पारम्परिक व्यवसाय तथा संगठित व असंगठित क्षेत्र में कार्यरत् हैं। परिवार के आर्थिक ढाँचे में उसकी अहम भूमिका है। निम्न श्रमिक वर्ग की स्त्रियाँ सुबह से शाम तक खटने पर भी अपने जीवन के लिए अति आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति ही बड़ी मुश्किल से कर पाती हैं। इनका जीवन स्तर निम्न ही होता है। शिक्षित कामकाजी नारी का जीवन आर्थिक निर्भरता के बावजूद पुरुष पर आश्रित रहती है। कामगार नारियों की स्थिति चक्की के दो पाटों के बीच फंसे दानों की भाँति होती है। वे अपनी क्षमता से अधिक दुगुनी–तिगुनी मेहनत करती हैं। ये स्त्रियाँ अपने कार्यस्थल पर अनेक समस्याओं से जूझती हुयी घुटन भरी जीवन जीती हैं। समाज में अति पिछड़ा हुआ जीवन आ. दवासियों में देखा जा सकता है। यद्यपि इनकी सामाजिक दशा, गैर आदिवासी वर्ग से बेहतर है। आधुनिक उपक्रम एवं सुख–सुविधाओं से वंचित थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ ये अपने मूल–अवस्था में बने हुए हैं। आदिवासी नारी का जीवन समाज में अधिक संघर्षमय है। अतः कहा जा सकता है कि भारतीय लोकजीवन में नारी भिन्न–भिन्न दशा एवं स्थिति में है, लेकिन उनके जीवन के संघर्ष व उत्पीड़न में फर्क न होकर एक समानता देखी जा सकती है। ग्रामीण नारी प्रायः कुरीतियों के जंजाल में उलझी हुयी होती हैं, लेकिन उसके बनिस्पत शहरी नारी का बाहरी जीवन स्वतंत्र नजर आता है, परन्तु इन दोनों जगह में नारी की मुक्ति असंभव है। ऐसी दशा में लोक की नारी की उच्चतम स्थिति, उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, उन्नति एवं विकास का बेहतर होने का अंदाजा लगाना सही नहीं है। लोक में नारी का जीवन सम्मानजनक न होकर दयनीय है।

3.2 बेटीः लोक जीवन में नारी अनेक उत्तरदायित्वों का निर्वाह कई भूमिका में रह कर करती है। वह माँ, सास, पत्नी, बहू बेटी, बहन जैसी अनेक भूमिकाओं में देखी जा सकती है। इससे नारी की बहुरंगी छवि बनती है। नारी माँ के अप में साक्षात् ममता, वात्सल्य की मूरत है तो वहीं सास के रूप में कटुभाषिणी, क्लेश, द्वेश पीड़ा देने वाली होती है। माँ, पत्नी, बेटी, बहन के रूप में नारी जीवन का उज्ज्वल चरित्र उभर कर आता है तो सास, ननद, भौजाई, सौत, कुलटा, टोनही के रूप में मलिन रूप के साक्ष्य उभरते हैं। इस प्रकार बुन्देली लोकगीतों में नारी के

कई रूपों का निरूपण हुआ है जिसमें वह आदर्श और नकारात्मक दोनों छवियों में दिखाई पड़ती है। लोकगीत में बेटियों की छवि माता–पिता के लिए स्नेहिल होती है। मगर पितृसत्ता के चलते उसे परायाधन मानकर उसके साथ दुहरा व्यवहार किया जाता है। बेटी का महत्व पुत्र के बाद आता है। लोकगीत में बेटियों को कभी गऊ तो कभी चिड़िया जैसे शब्द से संबोधन किया जाता है।

दौलत न दई राम जू और बिटिया, दे दई रामजू।
बिटिया दे के निदियाँ ले लई विपदा दे दई रामजू।"[16]

बेटी की छवि लोकगीत में त्रासदी से भरी है। बेटे का जन्म मेरे घर और बेटी का जन्म दूसरे के घर यह मनोवृत्ति समाज के गहरे तक पैठी है। बेटियाँ ससुराल में मातृपक्ष के संबंधों को गाली सुनाने वाली कही गई है और पुत्र परिवार का नाम रोशन करने वाला माना जाता है। यह भाव इस गीत में द्रष्टव्य है–

"दसे मास के बेटवा जन्मे दस के झोके जोहार अपन तरे पुरखा ल तारे, तारे कुल परवार का बिटिया झगरी जनमे पुरवाल गारी सुनावे।"[17]

3.3 बहन :नारी जीवन का एक कोमल पक्ष बहन के रूप में लोकगीतों में प्रकट होता है। बहन की छवि में माँ के व्यक्तित्व का कुछ अंश समाहित होता है। भाई से उम्र में बड़ी होने पर उसे माँ के समान आदर सम्मान मिलता है। उसका स्नेह मातृत्व में बदल जाता है। भाई से छोटी होने पर बहन को स्नेह, प्यार, दुलार मिलता है। भारतीय समाज में भाई बहन के प्रेम की पवित्रता को विशेष महत्व दिया जाता है। यह बुन्देली लोकगीतों में देखा जा सकता है–

''कछू दइयो न राखी बधाई को प्रेम बड़ों बहन भाई को।"[18]

3.4 पत्नी : माँ के रूप के बाद नारी की दूसरी महत्त्वपूर्ण छवि पत्नी के रूप में उभरती है। नारी पत्नी रूप में पति की चिरसंगिनी होती है। विवाह बंधन में बंध जाने के पश्चात पति के हर सुख–दुःख में साथ निभाती है। पति–पत्नी का रिश्ता हर रिश्ते से बढ़ कर प्रगाढ़ता लिये होता है। लेकिन सत्य यह भी है उसके वैवाहिक जीवन में कदम रखते ही उसकी पीड़ा व्यथा की शुरुआत भी होती है। ससुराल में वह सदैव मर्यादाओं में बँधी होती है, जबकि मायके में उतनी ही स्वतंत्र होती है। इस गीत में भी नारी की स्वतंत्रता, आजादी और स्वतंत्र व्यक्तित्व की झलक स्पष्ट है–

"मइके के खोल बड़ सोहन मोर ददा, रेंग लेहों बइहाँ झकोर
ससुरे के खोल बड़ सांकुल मोर ददा, रेंग लेहों बईहाँ सकेल।।"[19]

भारतीय समाज में पत्नी की आदर्श और मर्यादित छवि सीता की जैसी अपेक्षित है। पतिव्रत धर्म, एक पतिनिष्ठ प्रेम के अलावा उसमें असीम सहनशीलता और त्याग की भी अपेक्षा की जाती है। पत्नी भी पति को परमेश्वर मानते हुए उसकी अनुगामिनी बनती है।

गेहूँ के रोटी ल करिडारे कुटका, करिडारे कुटका बड़ा निक लागे।
मोर धनि के मुटका निक लागे।।

लोकगीतों में नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व की उपेक्षा से पत्नी की यथार्थ छवि दीन हीन होती है। ससुराल में किसी प्रकार की सुख की अपेक्षा रखना उसके लिए व्यर्थ है। उसे सदैव वेदना और प्रताड़ना ही मिलता है।

3.5 माँः नारी के विभिन्न रूपों में माँ की छवि संसार में सर्वाधिक गरिमामयी व वंदनीय है। लोकगीतों में भी माँ के रूप में वह ममता, वात्सल्य, करुणामयी छवि की अधिकारिणी है। पुरुष प्रधान समाज में पुत्र जनने पर वह ज्यादा गौरवान्वित होती है। जबकि एक माँ के लिए पुत्र–पुत्री दोनों समान होते हैं। वह दोनों के प्रति समान स्नेह, प्यार, दुलार का भाव रखती है। उसकी संतान के प्रति ममता को किसी परिधि या वजन से नापना संभव नहीं है। माँ की अपार ममता का चित्रांकन इन गीतों में उमड़–घुमड़ कर आता है–

"दाई के रोये नदिया बहत हे। ददा के रोये तलाब भरत हे।
भइया के रोये डबरा भरत हे। भौजाई के नयन कठोर।"[20]

माँ की छवि में नारी ममता, वात्सल्य की साक्षात मूरत होती है। इस संसार में माता जैसी शीतल छाया, आश्रय स्थान या प्रियवस्तु कोई दूसरा नहीं है। वह संतान को जनने से जननी, उसके प्रतिपालन करने से अम्बा और उसे वीर बनाने से वीरस कहलाती है। इन गीतों में माँ का श्रेष्ठ वर्णन है–

"नारी निंदा झन कर दाऊ, नारी नर के खान रे।
नारी से नर उपजे ध्रुव प्रहलाद समान।।"[21]

नारी संतान की सबसे बड़ी संरक्षक होती है। माता अपनी संतान को कभी अनाथ नहीं होने देती, बल्कि उसके न रहने पर अनाथ हो जाते हैं। वह विषम परिस्थिति में अपनी संतान का सहारा बनती है। कई बार यह पाया गया है कि पिता संतान के पालन–पोषण में उदासीन दिखते हैं। माँ हर परिस्थिति में परवरिश करने का सामर्थ्य रखती है। माँ के सामर्थ्य का वर्णन इस गीत में है–

"बपरी परोसिन खद्दर कांडी छवाके ना रे सुवना अपन कुरिया म रही जाही
बनी भूती कसनो करके ना रे सुवना लईकन ला सेई डारही।"[22]

3.6 बहू, सास, ननदः नारी एक पत्नी के रूप में परिवार में बहू होती है। लोकगीत में बहू की छवि असहाय, लाचार एक निरीह प्राणी की है। ससुराल में गृहलक्ष्मी के रूप में बहू प्रवेश कर गृहस्वामिनी कहलाती है परन्तु उसकी वास्तविक छवि गृहदासी की होती है। वह मूकभाव से परिवार के बुर्जुर्गों की सेवा व तीमारदारी तथा परिवार के अन्य सदस्यों की छोटी से छोटी जरूरतों का ख्याल रखती है। यथार्थ में बहू के रूप में नारी ससुराल में सास, ननद, देवर, जेठानी तथा अन्य सदस्यों से प्रताड़ित होती है। उसे कभी कम दहेज लाने पर घर से निकाल दिया जाता है, तो कभी मार दिया जाता है। कभी–कभी अत्यधिक प्रताड़ना से वह स्वयं आत्महत्या कर लेती है। हमारे समाज में बहू की त्रासदी का चित्र बुन्देली लोकगीतों में मौजूद है–

"गये हे बहुरिया पानी भरेला रे सुवना गये हे पानी भरेला एरिया बिछल गे
घईला फूटगे गुढ़री गईस तरबोर रे सुवना नागर जोतत नगरिया टूटगे,
ईटा काटत चतवार रे सुवना सास ससुर मोरे जीवरा ल लेवा, के संगी पियावा मोला जहर ल।"[23]

ननद भाभीः ननद भाभी की भूमिका में नारी का चित्रण लोकगीत में हुआ है। ननद भाभी के रूप में इनका संबंध मधुर न होकर आपसी तकरार लिए होता है। दोनों प्रतिद्वंदी की तरह दिखाई पड़ती हैं। भाभी ननद के बीच मधुर संबंध भी होते हैं परन्तु बुन्देली लोकगीत में भाभी ननद के लिए अढ़ एवं कठोर भाव प्रदर्शित हुआ है–

दाई के रोये नदिया बहत हे, ददा के रोये तलाव।
भाई के रोये डबरा भरत है, भौजी के नयन कठोर।।

ससुराल में नववधु की परिवार के अन्य सदस्यों के बीच परिचय का सेतु 'ननद' बनती है। भाभी का मार्गदर्शन करने के कारण ननद प्रिय भी बन जाती है, तो कभी सास से भाभी की बुराई करने के कारण ननद की छवि चुगलखोर की भी हो जाती है। भाभी भी ननद के प्रति उदार नहीं होती है। वह उसे पारिवारिक जीवन का रोड़ा समझती है। इसका कारण सास का अपनी बेटी को अत्यधिक प्रेम करना माना जाता है। घर के कामकाज का बोझ बहू पर डाल देने के अनेक कारण हो सकते हैं। ननद भाभी के बीच अक्सर कड़वाहट रहती है। इनके बीच प्रेम तथा सहानुभूति की कमी देखी जाती है–

"ननदी बोलायेव उहू नई आइस ननदी हो हमार
का करि लेहव बहिनी हो बला के कांके मढ़ईबोन
हम छबीली सबे के काम पड़बोन
ननदोई बोलायेव अहू नई आइस।"[24]

सासः नारी की नकारात्मक छवि का दर्शन, सास के रूप में लोकगीत में प्रतिबिबिंत है। माँ के रूप में नारी अवश्य गौरवान्वित होती है परन्तु सास के रूप में कठोर दिखाई पड़ती है। सास हमेशा बहू के प्रति सख्त, कठोर व्यवहार करती है। वह अभद्र व्यवहार के साथ मारपीट करने से भी नहीं कतराती। बहू के आने से बेटे पर एका. धिकार खोने तथा परिवार में उसके अधिकार क्षेत्र में कमी आने से वह अपनी खीज बहू पर प्रदर्शित करती है। बुन्देली लोकगीत में सास के रूप में माँ की ममतामयी छवि कम देखने को मिलती है। सास की दुष्ट प्रवृति का चित्रण सुवा गीत में सजीवता के साथ मिलता है। वह बहु से मारपीट करती हुई दिखती है–

तरिहरि नाना मोर नाह नरि नाना रे सुअना तिरिया जनम झनि देय,
रे सुवना तिरिया जनम मोर गऊ के बरोबर रे सुवना के तिरिया जनम झनि देय
सास मोला मारय ननद गारी देवय रे सुवना के पिया गये हे परदेस"[25]

बंध्या स्त्रीः बुन्देली लोकगीतों में नारी जीवन का यथार्थ यह भी है कि उसके जीवन की सार्थकता व पूर्णतः पुत्रवती होने पर ही मानी जाती है। इसके अभाव में उसका सर्वत्रगुण तथा सौन्दर्य धूमिल पड़ जाता है। लोक में निसंतान स्त्री को बाँझ या बाँझिन कहकर अपमानित किया जाता है। घर परिवार में वह सदैव उलाहना, उपहास का पात्र बनती है। वह अपने पति के प्रेम और सहानुभूति से भी वंचित हो जाती है। बुन्देली लोकसाहित्य की विदुषी शकुन्तला वर्मा लिखती हैं कि "नारी यदि बंध्या हुई तो उसके माथे पर कलंक का टीका लग जाता है। स्वयं तो

वह वेदना पाती ही है, किन्तु उसको सभी की उपहास की दृष्टि सहनी पड़ती है। वह हरेक की दृष्टि में हेय है। उसे अपने पति की सहानुभूति नहीं मिलती।"

बुन्देली लोकगीतों में पुरुष नारी से उसके बंधत्व का कारण पूछता है—

"तिली बरन तोर तिलरी दिखत हो गहूं बरन तोरे मांगे हो।
गोमची बरन तोरे देहे दिखत हो कैसे के परे हस बांझ ओ।"[26]

गर्भस्थ स्त्रीः छत्तीसगढ़ी लोकगीत में गर्भवती नारी की छवि और उसकी गर्भावस्था का वर्णन बखूबी हुआ है। एक महिला के माँ बनने का अनुभव उनके जीवन का सबसे सुखद पल होता है। यह उसे पूरे होने का अहसास दिलाता है। इस दौरान शरीर के भीतर एक नये जीवन का सृजन हो रहा होता है। गर्भावस्था से शरीर में आये परिवर्तन से वह शील, संकोच, लज्जा का अनुभव करती है और उसे पति, सास ससुर का प्रेम, स्नेह, सहानुभूति भी मिलती है। निम्न गीत में गर्भवती स्त्री का चित्रांकन सजीवता के साथ मिलता है—

"पहिली महीना जब लागे, अंग परियाये हो ललना अंग पियर मुँह ढुरढुर, गरभ के लच्छन हो।।
दूसर महीना जब लागे, सासे गम पाई हो ललना जेठानी गोड़ पछियाय, जीव मतलावे हो।।
तीसर महीना जब लागे सास पुलकाये हो ललना होहें बंस अंजोर, मोतिन माल लुटौहों हो।
चौथे महीना जब लागे, ननद मुसकाये हो ललना होहै लाल कन्हैया, पंचलड़ पावव हो।।
पाँच महीना जब लागे, बहुरिया माटी खाये हो ललना पान बीरा न सुहाय, सिट्ठा, मुख लागे हो।।
छै महीना जब लागे, पिया के पग लागे हो ललना आवों न सेजिया तोहार, अंग मोर भारी हो।।
सात महीना जब लागे, सासू कर जोरैव हो ललना न अब भीतर अमांव, दारुण दुरूख हौवे ओ।।
आठ महीना जब लागै. आठो अंग भरि आए हो ललना।। कस पहिरै पट चीर, न संभरै संभारै हो।।
नौ महीना जब लागै, सासु सोवें अंगना हो ललना पीरा कब उठ जाय, पैकहिन बुलवावै हो।।
दस महीना जब लागै जन्मे लाल कन्हैया हो ललना बाजत है आंनद बधैया, सखिमन मंगल गावै हो।।"[27]

दासीः दाम्पत्य जीवन में पति पत्नी के रिष्ते में न जाने कितने दुरूख सुख के क्षण आते हैं। इस रिश्ते में पति स्वयं को श्रेष्ठ और पत्नी को दासी समझता है। उसके साथ किये जाने वाले व्यवहार से पत्नी की छवि दासी जैसी उभरती है। पति एक वस्तु की भाँति उसे बेचने की हैसियत रखता है। पुरुष की इस मनोवृत्ति का चित्रांकन निम्न गीत में है। पुरुष दृष्टि में एक वस्तु या उसकी सम्पत्ति है—

"छेरी ल बेचौं, भेढ़ी ल बेचौं, बेचौं भैंसी बगार। बनी भूती माँ हम जी जाबो, सोबोन गोड़ लमाय।।
छेरी न बेचौं, भेढ़ी न बेचौं, न बेचौं भैंसी बगार। मोले नही माँ हम जी जाबो, अऊ बेचौं।।[28]

3.7 प्रेयसी, सौत, कुलटा, वेश्या

नारी की एक पत्नी के रूप में, पति की प्रिया की छवि भी लोकगीतों में मिलती है। नारी अपने प्रेमानुराग से पति के हृदय में पहुँचकर अपनी अमिट छाप छोड़ जाती है। पत्नी के रूप में नारी पति की प्रेयसी होती है, उसका सर्वस्व उसका पति होता है। लोकमर्यादाओं एवं संस्कारों में बंधी होने के कारण उसका प्रेम भी मर्यादित, संयमित रूप में दिखाई पड़ता है। प्रेयसी के रूप में नारी पति से एकनिष्ठ सच्चा प्रेम कर उसे जिंदगी भर निभाने की चाहत इस गीत के माध्यम से रखती है—

"अमली के लकड़ी काटे म कटही। तोर मोर पीरित हा मरे म छुटही।"

सौतः नारी के विविध रूप में सौत की छवि एक नारी के लिए भयावह है। सौत के पुतले से भी नारी डरती है। नारी अपने जीवन में दुःख—तकलीफ, मार—पीट सब कुछ बर्दाश्त कर लेती है परन्तु वह सौत को सहन नहीं कर सकती। वह उसके पति के प्रेम को बाँटने वाली होती है जिस पर उसका एकाधिकार होता है। लेकिन नारी के जीवन में सौत रूपी जहर भी घुली रहती है। वह उसके जीवन में अपार दुःख का कारण बनती है। इससे वह कलह, तकरार, पीड़ा, ईर्ष्या और संत्रास भोगती है। प्रस्तुत गीत में एक नारी का संत्रास व्यक्त हुआ है—

पानी के बूँदे सवते के बोली कइसे के जनम पहाही
"पीपर के झार पहट भर, मधु के दुई पहर हो।
सउती के झार जनम भर, सेजही बटौविन हो।"[29]

कुलटाः बुन्देली लोकगीतों में नारी के विविध रूपों में उसका एक नकारात्मक रूप कुलटा का भी मिलता है। पतिव्रत धर्म निभाने के कारण नारी आदर्श छवि रखती है, वहीं व्यभिचारी नारी घर, समाज में अपनी प्रतिष्ठा व मानसम्मान खो बैठती है। समाज में व्यभिचार स्त्री—पुरूष दोनों के लिए निंदनीय है, लेकिन विवाहित नारी के लिए

अधिक घातक है। कभी–कभी अतृप्त वासना या परपुरुष के प्रति आकर्षक होने पर परिवार के सारे मर्यादा को ताक पर रख कर वह अवैध संबंध बनाती है। ऐसी नारी स्वभाव से छल कपट, धूर्तता से पूर्ण होती है और अवसर पड़ने पर अपने जीवनसाथी को धोखा देने से जरा भी नहीं झिझकती। लोकगीत में कुलटा स्त्री का वर्णन है जो धोखेबाज होती है–

"ऐ पार नदी ओ पार नदी, बीच मा कोदो खरही।
जगे जागे सोबे गौटिया, तोर डउकी हरही हो।।"[30]

वेष्याः लोकगीतों में नारी जीवन के नकारात्मक पक्ष को उजागर करने वाली छवि वेश्या की द्रष्टव्य है। यहाँ वेश्याएँ छिनार के नाम से जानी जाती है। वेश्या का गमन पुरूष करता है। स्वार्थपूर्ति के पश्चात उसके अस्तित्व को पुरुष कतई बर्दाश्त नहीं करता। लोकसमाज में इसको जरा भी स्थान नहीं मिलता है, ये सदा समाज बहिष्कृत होती है। वेश्या के धंधे में स्त्री भंयकर मजबूरी या जबर्दस्ती में डाली जाती है। इस धंधे में वह आदर सम्मान खो बैठती है। लोकगीतों में भी ऐसी स्त्री की घृणित छवि मिलती है–

"टिकली रे पैसा रे लिखरी किनार पैसा वाले ल बुलाथे रे लोधनिन छिनार।"[31]

3.8 अन्य

विरहिणीः ससुराल में पति के न रहने पर उसकी छवि एक विरहिणी नारी के रूप में भी उभरती है। पति के प्रेम में ससुराल के सारे दुःख कष्ट को भुला देती है। लेकिन जब पति व्यापार या किसी कारणवश घर छोड़कर बाहर चला जाता है, तो नारी पति के वियोग की अग्नि में जल उठती है। विडंबना यह भी है कि वह अपने बिछोह की पीड़ा को किसी से व्यक्त नहीं कर पाती। इस गीत में भी नारी का विरहभाव प्रगाढ़ता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। ससुराल में वह सब के साथ रहते हुए भी अकेली रह जाती है–

"पहली गवन करि डेहरी बइठाये रे सुवना! अब अब छाड़ि चले गिये बनिजार
काखर संग रहिहंव काखर संग खेलिहंव रे सुवना, काला देख रहंव मन बांध।
न रे सुवना, छोड़ के चले बनिजार।"[32]

पत्नी की भूमिका में प्रेयसी एवं विरहिणी की यह छवि एक स्वतंत्र नारी की भी होती है। इसके लिए विवाह बंधन में बँधने की आवश्यकता नहीं। विवाह पूर्व भी नारी प्रेमिका और विरहणी इन दोनों अपों में हो सकती है। स्त्री पुरूष के बीच आकर्षण शाश्वत नैसर्गिक सत्य है। प्रेमिका के रूप में नारी प्रिय से स्वछंद प्रेम रखती है। इनके प्रेम में न मर्यादा का बंधन होता है, न जाति पाँति आड़े आती है। प्रेम के संदर्भ में यह भी देखा गया है कि सच्चा प्रेम किसी एक से होता है और उसकी चाहत आजीवन बनी रहती है। सच यह भी है कि सच्चे प्रेम की परिणि ाति विवाह हो यह संभव नहीं। स्त्री को पुरुष का सच्चा प्रेम कम मिलता है, उसे धोखा, फरेब ही ज्यादा मिलता है। प्रेम की असफलता से वह विरह संताप भी झेलती है। एक विरहिणी की वियोग व्यथा को बुन्देली लोकगीत में देखा जा सकता है–

"चोंगी ला पीये उलद झोइला। मन सुररि के होगे रे खोइला।"[33]

विधवाः लोकगीत में वैधव्य जीवन का चित्रण भी मिलता है। पति के जीवित न रहने पर उसके जीवन का दुर्भाग्य तय है। वैधव्य जीवन अत्यंत कारुणिक एवं नारकीय होता है। उसकी कल्पना मात्र से नारी सिहर उठती है। यथा–

"खटिया के टूटगे पटिया, चारों खूँटा के साल रे भाई गौरी के छुटगे हितवा, रोई–रोई करत बिहान।
बिन बिरिछ के अंगना रे भाई बिन कुकरा के गाँव, बिन डौकी के डौका रोई रोई करथे बिहान,
मैं तो का जानो राम, जिवरा बियाकुल पिया बिना।"

घर परिवार में विधवा को कभी सहानुभूति मिलती है तो कभी तिरस्कार। शुभकार्य व यात्रा के प्रारंभ में इसकी छाया या मुखदर्शन त्याज्य माना गया है। वैधव्य जीवन के कठोर नियमों के अनुपालन करने के लिए उसे मजबूर किया जाता है। वह सुहाग की अधिकारिणी नहीं समझी जाती। पति की मृत्यु के बाद उसके सुहाग चिन्हों व साज श्रृंगार को उतार दिया जाता है। एक विधवा के लिए हिन्दू मान्यताओं में बनाये खास नियमों का वर्णन निम्न गीत में मार्मिकता के साथ मौजूद है–

"बपूरी जवारा के फूटगे करम रे सुवना जोड़ी मूँद लिहिस आँखी माँग होगे जुच्छा उतरगे चुरे रे सुवना चिरई के कतर दिन पाँखी सादा के लुगरा चढ़गे देह म रे सुवना उतरगे रिंगी चिंगी साड़ी जोड़ी के रहत ले मरजाद हे हमर रे सुवना नई तो जिनगी खइता हे माटी।"[34]

परित्यक्ताः पुरुष प्रधान समाज में एक स्त्री की गरिमा एवं मर्यादा पति से जुड़ी होती है, उसके न रहने पर समाज में सम्मान की कमी देखी जा सकती है। किसी कारणवश पति का त्याग या पति द्वारा त्याज्य पत्नी परिवार तथा समाज में अवांछनीय होती है। ऐसी नारी के लिए समाज में परित्यक्ता शब्द का प्रयोग होता है। यह शब्द नारी के लिए गाली जैसा है। जो उसकी अंतरात्मा को बेध जाता है–

"काहे गुना में तजे पर तजे मोहना मोरे जल बिन तरसे जल के मछुरियाँ
अन बिन तरसे अमीना सुंदर तारि पुरूष बिन तरसे रोई–रोई बदन मलीना मोहना मोरे।"

समाज में पुरुष से अलग नारी का स्वतंत्र रूप स्वीकार्य नहीं है। मान्यता यह भी है कि चाहे पुरुष विलासी हो, दुर्गुणी हो, कामचोर हो या उसके प्रेम में कमी हो फिर भी स्त्री उसके घर की दहलीज को नहीं लांघ सकती। परित्यक्ता या स्वतंत्र नारी की छवि समाज में अत्यंत हेय दृष्टि से देखी जाती है। निम्न राउत दोहे के माध्यम से इसे देखा जा सकता है–

"बिना दिया के मंदिर, बिना खंभ के ताल। बिना पुरुष के तिरिया, रे पड़े हे बेहाल।।"

नारी के संदर्भ में सच्चाई यह भी है कि पतित्यक्ता नारी पर पुरुष का दबाव व शासन न होने से वह स्वछंद जीवन जीने की आदी होती है। अपनी आर्थिक तथा शारीरिक यौन की पूर्ति के लिए किसी पुरुष से संबंध बनाने की कोशिश में रहती है। इसी कारण परित्यक्ता की छवि समाज में सम्मानजनक नहीं होती लोकगीतों में भी इसकी छवि अच्छी नहीं है।

टोनहीः बुन्देली लोकगीतों में नारी की बहुरंगी छवि प्रकट है। उनमें से एक 'टोनही' की भी है। लोकजीवन में 'टोनही' अपार पारलौकिक शक्तियां, तंत्र–मंत्र तथा जादू टोना करने वाली मानी जाती है। जनमान्यता के अनुसार ये अपनी शक्तियों का इस्तेमाल किसी का अनिष्ट करने के लिए करती हैं। टोनही जनमानस में भय उत्पन्न करने के कारण डरावनी छवि रखती है। ये अपार शक्ति प्राप्त करने के लिए मध्यरात्रि में नग्नावस्था में बाल खोल कर झूपती है और इस समय उसकी टपकती लार से रोशनी फूटती है। यथा–

"सुत गे हे गाँव भर गा, टोनही झूपत हे आधा रात के गा आधा रात के गा टोनही झूपत हे चंदवा बैगा गा, आधा रात के गा।"

कर्मठ नारीः ग्रामीण अंचल की कर्मठ नारी की छवि का चित्रण भी बुन्देली लोकगीत में मिलता है। इनका जीवन सरल न होकर कठिन होता है। ये महिलाएँ अत्यधिक मेहनती, परिश्रमी, जुझारू होती हैं। घर का स्त्रियोचित समझा जाने वाला कार्य इनके कंधों पर होता है। बाहर के कार्यों में पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर योगदान देती हैं। कर्मठ नारी अलसुबह सूर्योदय पूर्व मुर्गा के बाँग देते ही बिस्तर छोड़ दैनिक गृह कार्य में लग जाती है। इसका चित्रांकन निम्न गीत में इस प्रकार हुआ हैं–

"अरे कुकरा के बासत कैना, पउहा के पाटत गंगा ओ अऊ उठि जावै भिनुसार अरे आंगन करे मोर गोबर ल कैना ओ अऊ घरे के जतन करे न मोर तियार अरे घघरी अऊ धरे सगुरी मं अऊ चलथे अऊ संगरी में करै सनांए ल हो।"

उक्त गीत में स्त्रियों की छवि अत्यधिक कर्मठ दिखाई पड़ती है। हर विषम परिस्थिति में भी खेत खलिहानों में कार्यरत रहती है। गरजते, बरसते, बारिश के दिन, कड़कड़ाते ठिठुरते ठंड हो या सूरज की तपिश, खुले आसमान या छत के नीचे, वह निरंतर अपने कार्य निस्पादन में लीन रहती है–

"गरजय बादर खा धम पछाड़, धर संगी नागर आ गये असाढ़ चल दिस सुटूर–सुटूर बइसाख ह।।"

श्रम ही इनके जीवन का ईश्वर होता है। ये मेहनत पर विश्वास करती हैं। छल कपट से दूर वह अज्ञानता तथा अंधविश्वास के गिरफ्त में फँसी दिखाई देती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है, लोकजीवन में नारी की विभिन्न भूमिकाओं का यथार्थ चित्रण लोकगीतों में हुआ है। घरेलू नारी के रूप में घर परिवार की जिम्मेदारी को वह संभालती है। वहीं कर्मठ होने का परिचय घर से बाहर अथक परिश्रम कर देती है। लोकगीतों में स्त्री की पारिवारिक भूमिकाओं का चित्रण अत्यधिक हुआ है। उसकी धार्मिक, अंधविश्वासी, अढ़िवादी छवि का चित्रांकन कम मात्रा में हुआ है। पारिवारिक जीवन में नारी की आदर्श छवि पत्नी, माँ, बेटी के रूपों में, तो नकारात्मक छवि का चित्रण सास, ननद तथा सौत के रूप में हुआ है।

Author's Declaration:

I/We, the author(s)/co-author(s), declare that the entire content, views, analysis, and conclusions of this article are solely my/our own. I/We take full responsibility, individually and collectively, for any errors, omissions, ethical misconduct, copyright violations, plagiarism, defamation, misrepresentation, or any legal consequences arising now or in the future. The

publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible or liable in any way for any legal, ethical, financial, or reputational claims related to this article. All responsibility rests solely with the author(s)/co-author(s), jointly and severally. I/We further affirm that there is no conflict of interest financial, personal, academic, or professional regarding the subject, findings, or publication of this article.

सन्दर्भ सूची

1. शर्मा, रमा एवं मिश्रा.एन.के. भारतीय नारी वर्तमान समस्याएं और भावी समाधान दिल्लीः अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 2010. पृष्ठ 9.
2. बोउवार, सीमोन. स्त्री उपेक्षिता. दिल्लीः सरस्वती विहार, 1990. पृष्ठ 51
3. गुप्त, नत्थूलाल. महाभारत कालीन समाज और शिक्षा. नई दिल्ली : नमन प्रकाशन, 2012. पृष्ठ 102.
4. मुनि जी, आचार्य सम्राट श्री देवेन्द. भारतीय वाड.मय में नारी. नई दिल्ली : युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, 2006. पृष्ठ 183.
5. सिंह, वी.एन. एवं जनमेजय सिंह. नारीवादी. जयपुर : रावत पब्लिकेशन, 2013. पृष्ठ 76.
6. नाटाणी, शोभा. भारतीय समाज और नारी दशा एवं दिशा. जयपुर : मार्क पब्लिसर्स, 2010. पृष्ठ 70.
7. वोल्सटन क्राफ्ट, मेरी. स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2003. पृष्ठ 20.
8. एंगेल्स, फ्रीडरिख. द ओरिजन ऑफ द फैमिली. 1943. पृष्ठ 79.
9. मिल, जॉन स्टूअर्ट. स्त्रियों की पराधीनता. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2002. पृष्ठ 62.
10. व्होरा, आशा रानी. औरत : कल आज और कल. नई दिल्ली : कल्याणी शिक्षा परिषद, 2006, पृष्ठ 41.
11. सिंह, वी.एन. एवं जनमेयजय सिंह. नारीवाद. जयपुर : रावत पब्लिकेशन, 2013. पृष्ठ 340.
12. दुबे, अभय कुमार. भूमंडलीय का प्रति भूगोल : पितृसत्ता के नये रूप. सम्पादक –राजेन्द्र यादव, प्रभा खेतान, अभय कुमार दुबे, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2008. पृष्ठ 70.
13. ग्रीवर, जर्मेन. विद्रोही स्त्री. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2001. पृष्ठ 108
14. शरण, श्यामा. का न करै अबला प्रबल. आगरा : अरविंद प्रकाशन, 2007. पृष्ठ 119
15. नायडु, हनुमंत. बुन्देली लोकगीत. नागपुर : विश्व भारती प्रकाशन, 1989. पृष्ठ 24.
16. साहू, बिहारीलाल. बुन्देली भाषा और लोक साहित्य. दिल्ली : भावना प्रकाशन, 2003. पृष्ठ 127.
17. शुक्ला, निशा. बुन्देली लोकगीतों में नारी. मित्तल एंड संस, 2016. पृष्ठ 174.
18. नायडू, हनुमंत. बुन्देली लोक गीत. नागपुर : विश्व भारती प्रकाशन, 1989. पृष्ठ 54.
19. शुक्ल, उर्मिला. बुन्देली लोकगीतों में नारी मन का चित्रण और स्त्री विमर्श. रायपुर : वैभव प्रकाशन, 2015. पृष्ठ 71.
20. चंदेल, गोरेलाल. बुन्देली ददरिया का तात्विक अनुशीलन. नागपुर :जे.पी. गुप्ता. पृष्ठ 34.
21. ठाकुर, ध्रुवसिंह. बुन्देली लोक में नारी अंतर्मन की व्यथा : सुआनृत्य. सं. कालीचरण. मंडई पत्रिका, 2007. पृष्ठ 154.

Cite this Article-

'*प्रीति सिंह, डॉ0 अलका मौर्य*, '*बुन्देली लोकगीतों में स्त्री की विभिन्न छवियाँ*, Shodhpith International Multidisciplinary Research Journal, ISSN: 3049-3331 (Online), Volume:1, Issue:05, September-October 2025.

Journal URL- https://www.shodhpith.com/index.html

Published Date- 2 September 2025

DOI-10.64127/Shodhpith.2025v1i5005